CONTEMPORARY RESEARCH IN INDIA
ISSN 2231 - 2137

मानव सभ्यता के विकास क्रम को लेकर एक बड़ा सवाल छोड़ जाता है : 'फरिश्ते निकले'

डॉ. विश्वजीत कुमार मिश्र, *असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजीव गाँधी सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी, दोड़मुख, अरुणाचल प्रदेश*

Received: 11/02/17	Edited: 17/02/17	Accepted: 27/02/17	Area: Hindi

बहुत कुछ सच है जो हम सभी अपनी दृष्टि की अपार शक्ति से देखते हैं; देखे जाने के तरीके से नहीं; 'नहीं देखा' ! या 'देख नहीं पाया' ! के रटे-रटाये हैसियत को जिन्दा रखने के तरीके से । कभी-कभी तो ध्यान देते हुए भी नहीं देखते, जबकि देख रहे होते हैं। सुनते हुए भी नहीं सुनते हैं जबकि सुन रहे होते हैं । जो बहुत सजग हैं वे अपने को बचाते हैं ऐसा उन्हें लगता है पर अपनों को बचाते हुए भी नहीं बचा पाते हैं । लेकिन साहित्यकार देखता है देखने के लिए ही नहीं ; लिखने के लिए भी । साहित्यकार देखता है देखने के बाद कुछ करने के लिए, सुनता है कुछ सुनाने के लिए, समाज के पास पहुँचने और पहुँचाने के लिए, सजग करता है आने वाली पीढ़ी को बचने-बचाने के लिए । आज के लिए जीने वाले नवयुवकों को अपनी कलम की शक्ति से परिचित कराता है क्रांति के उद्देश्य से ।

मानव मन विकास की चेतना को साथ लेकर चलता है । चेतना का स्वरूप जिस प्रकार परिवर्तित होता है समाज में परिवर्तन भी उसी स्तर का होता है। जिस परिवर्तन से समाज में विकास होता है मानव का मन भी उधर ही आकर्षित होता है और वही आकर्षण साहित्य के परिवर्तित स्वरूप में भी दिखाई देता है।सत्यतः साहित्य समाज का दर्पण है, ऐसा सदियों से कहा जाता है। लेकिन, असल में यह उससे भी कहीं बढ़कर है। यह कोई सामान्य आईना नहीं है, जो सिर्फ आपको आपके चेहरे की आकृति, रंग से परिचित कराता हो, बल्कि साहित्य वह आईना है, जो चेहरे के पीछे छिपे चेहरे पर रोशनी डालता है। वह बताता है कि देखिए, खूबसूरत तस्वीर की बदसूरत असलियत। वरिष्ठ साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास-फ़रिश्ते निकले हमें समाज के उन तमाम स्वनामधन्य खूबसूरत चेहरों की ओर ले जाता है, जिनके दामन में छल, प्रपंच, धूर्तता, झूठ, मक्कारी की कई परतें चिपकी पड़ी हैं। फ़रिश्ते निकले महज एक उपन्यास नहीं है, बल्कि यह मुख्य पात्र बेला बहू के सहारे उकेरी गई समाज की वह असली तस्वीर है, जिसमें घुटन, अपमान, अन्याय व शोषण के रंग हैं और जिन्हें बेपर्दा किया है बेला बहू, अजय सिंह, जुझार, उजाला, वीर एवं अन्य पात्रों के संघर्ष ने। दरअसल, साहित्यकार का असल धर्म-असल कर्तव्य यही है कि वह समाज में, अपने इर्द-गिर्द, पास-पड़ोस और जहां तक उसकी नज़र जाए, सच को तलाशे और, उस सच को तलाशे, जिससे हर कोई परे होकर निकलना चाहता हो, जिसे हर कोई नज़रअंदाज़ करना चाहता हो, स्वार्थवश अथवा मजबूरन। मैत्रेयी जी ने यह काम बखूबी अंजाम दिया है और पूरी ईमानदारी के साथ। फ़रिश्ते निकले बताता है कि डाकू सिर्फ जंगलों-बीहड़ों में नहीं होते, वे समाज के अंदर घनी आबादी के बीच भी होते हैं. और, ऐसे डाकू उन्हें बड़े शातिराना ढंग से लूटते हैं, जो अन्याय, अत्याचार व शोषण के विरुद्ध बगावत कर जंगलों-बीहड़ों में उतर जाते हैं। फ़रिश्ते निकले बताता है कि समाज में शुगर सिंह जैसे लोग अपने जीवन में खुशियां लाने के लिए धन-बल और ऐश्वर्य के सहारे किसी का जीवन कैसे बर्बाद कर देते हैं। फ़रिश्ते निकले बताता है कि आज की राजनीति और अधिसंख्य राजनेताओं का असली चेहरा क्या है। वह बताता है कि भारत सिंह एवं जोरावर जैसे लोग, जो समाज में प्रतिष्ठित और अगुवा माने जाते हैं, उनकी नज़र में महिलाओं की हैसियत दो कौड़ी की है। वे महिलाएं तो खासकर, जो वक्त की मारी होती हैं और ग़रीबी जिनके प्रारब्ध का प्राक्कथन होती है। वही ग़रीबी, जिसने बेला को बेला बहू बनाया, जिसने जुझार को बागी बनाया, जिसने उजाला एवं उसके पिता राम रतन लोहापीटा के जीवन में अपमान के अंगार भर दिए और जिसने सीधी-सादी फूलन को दस्यु सुंदरी बना दिया।1

राष्ट्र के अन्दर इस राजनैतिक समीकरण का आधार अत्यंत प्राचीन है। वर्तमान भी उससे अछूता नहीं है। भारत सिंह और जोरावर आज भी महिलाओं के उत्पीड़न और शोषण में अनवरत लगे हुए हैं। हमारे समाज को कमजोर कर रहे ऐसे राजनेताओं में भारत सिंह या जोरावर जैसों की कमी नहीं है। वे केवल दिल्ली तक ही नहीं फैले हैं या गाँव तक ही सीमित नहीं हैं। वे तो समाज के चप्पे-चप्पे पर खड़े मिलेंगे हैं । पुरुषवर्चस्व को जीवित रखने वाले तथाकथित समाज के कर्णधार स्त्रियों पर कहर ढा रहे हैं ।

भूखा-गरीब-किसान या अपनी पुस्तैनी रोजगार सम्हालने वाला लोहार अपने एकमात्र सहारे के छूट जाने के बाद किस प्रकार बेबस एवं बेसहारा होकर रह जाता है।देश के सामने इसका जो दृश्य-

चित्र उभर कर आता है । उसका चित्रण बहुत कम साहित्यकारों की रचनाओं में हुआ है।उपन्यास 'फ़रिश्ते निकले' कई मायनों में बेमिसाल है। वह बताता है कि परंपरा और विरासत को जिया कैसे जाता है, कैसे उस पर गर्व किया जाता है। राम रतन लोहापीटा अपनी गाड़ी को जायदाद की तरह सीने से लगाए क्यों घूमता है, उसे हर क़ीमत पर बचाए रहने की जुगत क्यों करता है? और, जब गाड़ी बिक जाती है, तो उसे क्यों लगता है कि उसकी अनमोल थाती बिला गई. उपन्यास-फ़रिश्ते निकले कई मायनों में बेमिसाल है. वह बताता है कि परंपरा और विरासत को जिया कैसे जाता है, कैसे उस पर गर्व किया जाता है. राम रतन लोहापीटा अपनी गाड़ी को जायदाद की तरह सीने से लगाए क्यों घूमता है, उसे हर क़ीमत पर बचाए रहने की जुगत क्यों करता है? और, जब गाड़ी बिक जाती है, तो उसे क्यों लगता है कि उसकी अनमोल थाती बिला गई. फ़रिश्ते निकले बताता है कि खुद को महाराणा प्रताप का वंशज मानने वाले, जन-सामान्य में लौह-मानव, लोहापीटा जैसे उपनामों से पहचाने जाने वाले और देश भर में जगह-जगह डेरे लगाकर रहने वाले लोग भी हद दर्जे तक सच्चे व ईमानदार होते हैं. आम समाज में उन्हें लेकर जो धारणाएं हैं, वे मिथ्या हैं. फ़रिश्ते निकले बताता है कि अन्याय और शोषण किस तरह एक संपन्न परिवार के नवयुवक अजय सिंह को घर-द्वार, सगे-संबंधी और माता-पिता को छोड़कर चुपचाप निकल जाने तथा फिर बीहड़ में कूदने को बाध्य कर देता है. अजय सिंह के माध्यम से पता चलता है कि बागियों का जीवन होता कैसा है, उन्हें एक रोटी-एक कारतूस के बदले कितनी क़ीमत चुकानी पड़ती है, एहसान अलग से सिर-आंखों पर लेना पड़ता है. और, अपने किसी साथी की एक मामूली-सी ग़लती पर समाज की ज़लालत अलग से सहनी पड़ती है. उपन्यास की भाषा और शिल्प में मैत्रेयी जी का अनुभव बोलता है. कहानी गढ़ना, फिर उसे दूसरी, तीसरी, चौथी... अनगिनत कहानियों के साथ पिरोते जाना. पूरी लयबद्धता और पूरी रोचकता के साथ. पाठक यदि पढ़ना शुरू करे, तो अंत तक पहुंचे बिना माने नहीं. खाना-पीना-सोना, सब कुछ भूल जाए. यही तो लेखन की सार्थकता है और लेखक की सफलता भी. बहुत कुछ है, फ़रिश्ते निकले में, जिसका बखान एक सीमित स्थान पर नहीं किया जा सकता. फिर कहावत के रूप में हमारे सामने वह शाश्वत सत्य भी है कि भला सूरज को दीपक कौन दिखा सकता है. 2

समाज में स्त्रियों की दशा आखिर आज ऐसी क्यों है? आज उसके बाहर जाने और घर नहीं आने तक उसकी सुरक्षा को लेकर माँ-पिता या अभिभावक की बेचैनी बढ़ती ही जाती है। जैसे-जैसे रात गहराती है आशंकाएं बढ़ती जाती हैं ।यह आज जिसमें हम जी रहे हैं क्या यही हमारा आने वाला कल भी होगा ? जहाँ स्त्रियाँ प्रेम की हार्दिक स्पंदन में जीवन को सक्रिय रखना चाहतीं हैं वहाँ उन्हें पुरुष की वासना का शिकार होना पड़ेगा ? आखिर कब तक चलेगा यह वर्चस्व का आतंक ? आज आवश्यकता है नई-पीढ़ी को आवाज उठाने और परिवर्तन की मांग के साथ-साथ चलने की । आज भी अनेकों प्रश्न पूछे जाते हैं घर चलाने वाली लड़कियों से, लेकिन जब तक वह धन प्रदान करने वाली रहती है देवी बन कर रहती है, घर में पैसा लाने के समय उस घर का पुरूष नहीं पूछता, जब समाज उस पुरूष से पूछता है तो उसका पुरूषत्व जाग उठता है । इस दोहरे विकृतियों के साथ मानव कब तक जीता रहेगा।

मैत्रेयी-पुष्पा के 'फरिश्ते निकले' उपन्यास में दो मुख्य पात्र हैं- बेला बहू और उजाला. इनकी ही कहानी मुख्य हैं. बाकी स्त्रियों की कहानियां पूरक हैं. ये दोनों स्त्रियां चाहती तो प्रेम हैं पर उन्हें प्रेम नहीं मिलता, यौन प्रताड़ना मिलती है. यह कितनी दुखदायी बात है कि प्रेम चाहने वाली स्त्री को समाज यौन हिंसा का पुरस्कार देता है. मेरा प्रश्न इस समाज से है कि आज भी स्त्रियों को यही सजा क्यों मिलती है? प्रेम का हक स्त्री को क्यों नहीं है? उपन्यास में लिली, बसंती आदि और भी लड़कियां हैं. इनके घर से भागने के पीछे कोई न कोई कारण जरूर रहा है. उदाहरण के लिए बसंती डाकुओं को खाना पहुंचाती है जिसके बदले में उसे पैसा मिलता है और घर का खर्च चलता है. यानी वह जरिया बन जाती है घर में पैसा लाने का. अब यह क्या है? वेश्यावृत्ति तो दिखाई देती है पर इस विनिमय को हम क्या कहेंगे? समाज को भी इससे समस्या नहीं है. स्त्री का सबकुछ करना स्वीकार है पर प्रेम करना स्वीकार नहीं है. इस उपन्यास में एक और बात ध्यान देने लायक है जब उजाला का बलात्कार हुआ तो उसे सीने से लगाने वाली बेला बहू ही है कोई पुरुष नहीं..... स्त्री-स्त्री की दुश्मन नहीं बल्कि उसका विस्तार है। 3

समस्याएं अज्ञात नहीं हैं । स्त्री का प्रेम करना समाज को स्वीकार नहीं है । पुरुष की आँखों में चुभता है उसका प्रेम अगर वह पराये के लिए हो, अपने लिए हो तो कोई प्रश्न नहीं । लेखिका ने ग्राम्य-परिवेश में एक स्त्री को सामने रख कर देखा है। अगर शहर भी आया है तो उसी प्रश्न के साथ । आखिर मानव सभ्यता के विकास पर यह सवाल क्यों ? गांव हो या शहर हर जगह पुरुष-वर्चस्व की होड़ क्यों? इस सवाल को मिटाना होगा विकास के इस क्रम में हम सभी बस इस लिए ही आगे बढ़ते रहेंगे या इससे ऊपर भी उठने की ताकत है हमारे समाज के कर्णधारों में । मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में बुंदेलखंड बार-बार आता है। वह वहां के ग्रामीण परिवेश को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखती हैं। इदन्नमम और चाक ने तो अपने प्रकाशन के बाद स्त्री विमर्श को एक नया आयाम दिया था। इन दोनों उपन्यासों के प्रकाशन के बाद उन पर टाइप्ड

होने का आरोप लगा लेकिन जब उनका उपन्यास अल्मा कबूतरी छपा तो आलोचकों की जुबान बंद हो गई। अल्मा कबूतरी बिल्कुल ही अलग विषय-कबूतरा जनजाति को केंद्र में रखकर लिखा गया बेहद पठनीय उपन्यास है। मैत्रेयी ने अपने उपन्यास विजन में ग्रामीण परिवेश को अलग रखकर शहरी जीवन का चित्रण किया है। इतना अवश्य है कि उनकी रचनाओं के केंद्र में हमेशा से स्त्री रही है।4

जब हर जगह एक स्त्री, पुरुष के द्वारा ही उत्पीड़ित है तो सवाल उठेगा ही | आज भी विकास के नाम को हमारा समाज जितना भी भुना रहा हो , स्त्रियों के लिए कठिनाइयाँ वैसी ही हैं बस अंतर यही हैं कि आज वह उत्पादन के केंद्र में है, वह भी अपने आन्तरिक ताकत के प्रयोग से | माना कि पुरुष का योगदान है, लेकिन वह भी एक सीमा तक, यही सीमा तो सवालों के घेरे में है |

अब स्त्री को भोग की बस्तु समझाने वाले सावधान हो जाओ | स्त्रियाँ अपने ताकत का प्रयोग करना जानतीं हैं | वर्चस्व से बाहर आकर जवाब देना सीख चुकी हैं | सिर्फ ऊँगली उठाने से तुम्हारी विजय नहीं होगी अब द्वन्द भी करना होगा | परिवार और समाज की प्रतिष्ठा का हवाला देकर अँधेरे में नहीं धकेल पाओगे | परिवार की प्रतिष्ठा के लिए पुरुष भी उत्तरदायी है और उसके कर्म भी| मैत्रेयी पुष्पा ने 'फरिश्ते निकले' के सामाजिक बुनावट में इसी सवाल को उठाया है | उपन्यास में पुरुष प्रधान समाज के भीतर स्त्री को यौन वस्तु समझने वाली सोच पर जबरदस्त कटाक्षकियागयाहै. – "बिन्नू! कोई आदमी जहां-तहां या थोड़ा-मोड़ा नहीं होता. वह जब होता है तो अपने गुन-अवुगनों के साथ पूरा-पूरा होता है, इतनी बात हम जानते हैं तो तुम भी अवश्य जानती होंगी...बेलाबहू! परिवार की पोल खुलेगी लेकिन तुम्हारा चाल-चलन तो जितना भी खुलेगा, लोगों की दिलचस्पी के लिए मजेदार चीज होगी. समाज हो या साहित्य या कि राजनीति, इनमें आनेवाली स्त्री 'कैची पॉइन्ट' मानी जाती है. मर्दों के चरित्र को कौन देखता है.'" 5

समाज में मर्दों के चरित्र को भी देखे जाने की आवश्यकता है | अब यह कह देने मात्र से की पुरुषों के लिए भी कानूनी व्यवस्थाएँ हैं, काम चलने वाला नहीं है | किताबों के कानूनी व्यवस्था को सही रूप में परिभाषित करके समाज में लागू करने की आवश्यकता है, साथ ही साथ उसके क्रियान्वयन में कड़ाई से पेश आने की आवश्यकता पर भी जोर दिया जाय | क्योंकि समाज का कोई भी चरित्र-भ्रष्ट व्यक्ति समाज के लिए कलंक है, चाहें उसका लिंग कोई भी हो | जाति कोई भी हो | वह क्षेत्र भी राजनैतिक हो या सामाजिक | हर जगह इस परिष्कार की आवश्यकता है | लेखिका ने समाज के प्रत्येक बिन्दुओं को दर्शाया है, जहाँ पुरुषों द्वारा स्त्री, जीवन के दल-दल में उतारी जाती है | पुरुष-वर्चस्व के हर कोण को देखती हैं लेखिका; स्त्रियों के संघर्ष में कहाँ तक उसके साथ है पुरुष, यह भी बताने से नहीं चूकती हैं | उस अंचल की भाषा में बड़े सरल तरीके से उन्होंनें कथा-क्रम को आगे बढ़ाया है | उपन्यास में क्षेत्रीय भाषा के इस्तेमाल ने इसे पढ़ने में और अधिक सरल और मजेदार बना दिया है. कैसे एक स्त्री अपना बचपन खो देती है, बिक कर एक अधेड़ के चंगुल में फंस जाती है, उसके बाद यौवन आने पर भी उसे वैवाहिक सुख नहीं मिल पाता. और फिर हमउम्र मर्दों के प्रति उसका खिंचाव, उसमें बच्चे, घर बसाने और ममता लुटाने की चाह, और हमदर्दी के बहाने अन्य पुरुषों द्वारा उससे अपनी जरूरतें पूरी किए जाना. स्वाभिमान और आत्मसम्मान भरी जिंदगी पाने के लिए संघर्ष की ये दास्तां बेहतरीन है. समाज का कोई भी पक्ष अगर सामाजिक नियमों का उलंघन करता है तो संतुलन बना पाना मुश्किल हो जाता है | लेकिन संतुलन बनाने की दुहाई देने वालों वर्चस्व को पुष्ट करना भी न्याय नहीं है | संतुलन के नाम पर सारे अधिकार अपने पास रखने वालों; अब समय सहयोगिता का है सहभागिता का है | इसी में सबका कल्याण है | अतः स्त्री का सम्मान करना उसकी गुलामी करना नहीं है | सम्मान तो सम्मान होता है | माँ को सम्मान देते हो तो अपने बच्चों की माँ को सम्मान देने में क्या हर्ज है| दूसरे की माँ-बहन को सम्मान देने से आपकी माँ-बहन को भी सम्मान मिलेगा | इस स्वरूप को बदलने की आवश्यकता है| स्त्री की प्रतीष्ठा की रक्षा करना तो पुरुष का धर्म है| यही सोच तो हमारे संस्कृति की मूल धरोहर है | फिर हम इस सामाजिक दायित्व से क्यों भागते हैं |

'समय बदल गया | स्त्रियों को वश में करना आज के युवकों के वश की बात नहीं |' यह कहने वाले अपने मर्दानगी का बखान करते हैं | यह वाक्य पितृ-सत्तात्मक सोच की देन है| वास्तव में आज यह मोह-भंग होना ही चाहिए, वर्चस्व से बाहर निकाल कर पुरुष को स्त्री के साथ मिलकर सामाजिक विकास के लिए नये रास्ते निर्मित करने की आवश्यकता है | उनके सम्मान की रक्षा करने की आवश्यकता है ताकि कोई यह न कह सके कि " क्या आत्मसम्मान से ज्यादा आराम की खाने का आकर्षण होता है औरत को? खुद्दारी निभाना इतना मुश्किल पड़ता है कि किसी मर्द के पास आते ही वह खुदा लगने लगे?"ये भी तो संस्कार है पुरुष सत्ता कबूल करने का संस्कार.उनके यहां बेला जैसी स्त्रियों के लिए दो ही भूमिका बेहतरीन है - आज्ञाकारिता और संभोगपटुता. बेला में ये खासियतें थीं शायद जो पाहुने जैसे लोगों को दिलचस्प लगीं. इसी अदा को बेला जैसी औरतों की सभ्यता समझा जाता है'..... 'बेला को आज लग रहा है कि जब-जब औरत को इस सभ्यता में डालकर तौला-मापा जाएगा,

तब-तब मरदाना जकड़बंदी कसती चली जाएगी और जब इस जकड़न के खिलाफ दासी जैसी रम्भाओं की लड़ाई जन्म लेगी तब-तब औरत के लिए पुरुषों में नफरत का भाव जगेगा क्योंकि वे औरत की जवानी को अपने फायदे में निचोड़कर मालिक बने रहने की कोशिश में रहते हैं. मगर यह 'सभ्यता' कब तक रहेगी?"6

सरकारें अपनी प्रयासों की लाख दुहाई दें परन्तु समाज का बहु-संख्य-पुरुष-वर्ग आज भी स्त्री को अपनी चंगुल से मुक्त होने देना नहीं चाहता है | कमजोर और बेसहारा पितृहीन लड़कियों की आज भी वही दशा है जो आज से पहले थी | अनमेल विवाह जो वैवाहिक-जीवन को घोर अंधकार में धकेल देता है | जिससे संघर्ष करने में ही जीवन का दुखमय अंत सुनिश्चित हो जाता है | मैत्रेयी पुष्पा की औपन्यासिक यात्रा जितनी बहुरंगी है उतनी ही मार्मिक भी. उनका उपन्यास 'फरिश्ते निकले' हाशिये की स्त्री का महाकाव्यात्मक आख्यान है. दस शीर्षकों में विस्तृत उपन्यास में दो आख्यान प्रमुख हैं. एक में कथा-नायिका बेला बहू की संघर्ष गाथा है, जिसके पिता की बचपन में मृत्यु हो जाती है. आर्थिक विपन्नता के कारण उसकी मां उसके स्वर्गीय पिता से भी अधिक आयु के व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर देती है. बालिका वधू पर उसके पति का अत्याचार, कालान्तर में उसका सौदा, छद्म प्रेमी तथा उसके भाइयों द्वारा उसका शोषण कहानी की विषय वस्तु है. दूसरी कहानी बुन्देलखण्ड के ग्रामीण परिवेश में लोहापीटा परिवार की लड़की उजाला और गांव के जमींदार के बेटे वीर की प्रेम कहानी है जिसका मूल्य उसे अपने ऊपर जानलेवा यौन हमला झेलकर चुकाना पड़ा. उपन्यास में अनेक ऐसे पात्र भी हैं जिनके जीवन संघर्ष, द्वन्द्व, संघात और उनके अन्तर्विरोध इस उपन्यास को एक क्लासिक गरिमा प्रदान करते हैं. परिवेश और चरित्र दोनों ही इतने प्रभावी हैं कि न तो परिवेश चरित्रों पर हावी होने पाता है और न ही चरित्र परिवेश को कमजोर होने देते हैं.7

घर में आई नई-नवेली दुल्हन से आज भी अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है | अगर वह अपनी व्यावहारिक योग्यता से स्थान बनाने में सक्षम है तो जीवन की गाड़ी आगे बढ़ती है वह भी बड़ी सूझ-बूझ से | अगर कहीं चूक हुई तो बड़ी मुश्किल होती है | यह पढ़े-लिखे परिवारों की बातें हैं | जहाँ शिक्षा का अभाव है वहां की स्थिति और खतरनाक एवं भयावह है| यहाँ तो मैत्रेयी-पुष्पा ने बालिका बधू पर हुए अत्याचारों को दर्शाया है | आज किशोर-वय एवं युवतियाँ भी इस वातावरण की शिकार हैं | विवाहोपरांत उनकी जीवन गाथा दुखों से भर जाती है, दहेज़ उत्पीड़न की घटनाएँ भी इसमें ही शामिल हैं | सामंतवादी ग्राम्य-परिवेश में आज भी यौन हमले हो रहे हैं | देश की राजधानी भी लड़कियों के लिए सुरक्षित नहीं है | मानवीय सभ्यता के विकास पर यह बहुत बड़ा सवाल है| आखिर हम कहाँ पहुँचे हैं विकास की इस होड़ में ? क्या विकास का यही परिणाम है ? क्या पुराना क्या नया ? समाचार-पत्र पटे होते हैं इन्हीं घिनौने-कृत्यों से ? लाखों पारिवारिक उत्पीड़न की शिकायतें दर्ज होती हैं, कुछ को दबा दिया जाता है, कुछ प्रक्रियाधीन होकर दम तोड़ देती हैं, बाकी बचे हुए का पता ही नहीं चलता है| उपन्यास की कथावस्तु का कालखण्ड विगत चार दशकों के ग्रामीण भारत के उपेक्षित, वंचित और सताए हुए स्त्री-पुरुषों का वह आख्यान है जो अपराध की दुनिया में प्रवेश करने को विवश होते हैं, लेकिन इसके बावजूद हमारी संवेदना के पात्र बनते हैं. ये कालान्तर में न सिर्फ मुख्य धारा में लौटते हैं, वरन शिक्षासेवी और समाजसेवी का दायित्व भी निभाते हैं.मैत्रेयी का यह उपन्यास स्त्री के शोषण और उसके उत्पीड़न की एक ऐसी महागाथा है, जिसे पढ़ते हुए हम दुःख की एक विशाल नदी को पार करते हैं और राजसभा में अपमानित हो रही महाभारत की द्रौपदी से लेकर आज की निर्भया हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाती है. उपन्यास में लोहापीटा परिवारों का जैसा सजीव चित्रण हुआ है, वह अनूठा है. उनकी परम्परा, रीति-रिवाज, रहन-सहन और विकास के इस आधुनिक युग में उनकी आजीविका पर आये संकट को जिस प्रकार मैत्रेयी ने अभिव्यक्त किया है, वैसा पहले किसी उपन्यास में नहीं हुआ. ग्राम्य-परिवेश में परंपरागत रोजगार-परक गतिविधियों का स्थान मशीनों ने ले लिया | इस स्थिति में परिवार किस तरह इस संकट से उबरने की कोशिश करता है यह उनके सदस्यों के संघर्षमय जीवन-यापन से पता चल जाता है |

समाज के प्रति औरतों के दायित्व को भूनाने वाले चन्द बहुरूपियों को सबक सिखाना आवश्यक है | उनके दोहरे चरित्र का पर्दाफास होना चाहिए | अपने आप को औरतों के भविष्य एवं उनके विकास का मालिक समझने वाले पुरुषों को जब तक औरतें अपने कर्तव्य-बल से नहीं समझायेंगी तब तक शोषण का यह क्रूर तांडव रुकने का नाम नहीं लेगा| उन्हें प्रेम से समझाना छोड़ कर एक स्वाभिमानी और शक्तिशाली औरत बन कर समझाना होगा| यह कार्य एक क्रान्तिकारी भावनाओं को जन्म देगी जिससे आने वाली पीढ़ियाँ परिवर्तन के आवाज को अच्छी तरह समझ सकेंगी | "समाज को बागी औरतें ही बदल सकती हैं,'भली' औरतों को मर्द गन्ने की तरह पेरते रहते हैं।".....".....मर्दों के पीछे दौड़ना छोड़ो औरतों, उनको अपने स्वाभिमान और सम्मान के पीछे दौड़ाओ। तुम मर्दों से ज्यादा योग्य हो क्योंकि जद्दोजहद के साथ हमदर्दी की मालकिन हो। मगर अपना गुस्सा पीने के लिए नहीं उगलने के लिए बचाकर रखो। औरत के गुस्से की आग में मर्दों के गुरूर और मालिकाना संस्कार भस्म हो जाएंगे।"8

वास्तव में समाज को बागी औरतों की आवश्यकता है जो समाज में परिवर्तन लाने में सक्षम हैं | जबतक पुरुष-वर्चस्व के विरूद्ध आवाज एक आन्दोलन का रूप नहीं धारण करेगा तबतक समाज का यह वर्चस्ववादी स्वरुप बदलने वाला नहीं है | उनकी नम्रता-विनम्रता को मजबूरी मानकर उनकी अवहेलना होती रहेगी | अपने आप को सक्षम बना कर उनके समस्त अहंकारों को चूर-चूर करना होगा |

समाज के भीतर झाँक कर देखने की देरी है| आँखों के सामने कई दृश्य घूम जायेंगे | आस-पास बता देगा हर-पल एक नयी कहानी| जहाँ परिस्थितियां विषमताओं से परिपूर्ण हैं, विद्रूपताओं से भरी हैं, अत्याचार, बलात्कार, शोषण जारी है| उसमें जीवन यापन करने वाली नारी अपनी अस्मिता को कैसे बचाती है या बचाती आई है यह सबसे बड़ा सवाल है मानव-सभ्यता के विकास पर | इन्हीं सवालों नें जन्म दिया है 'फूलन' को, बीहड़ घाटियों में जिंदगी के संतोष से लड़ने के लिए अपना सुख-चैन खोने के लिए, 'बागी' बनकर समाज के सामने दहशत पैदा करने के लिए, समाज के लोगों को 'डायन' बन कर खाने के लिए, घरों में 'चुड़ैल' बन घुट-घुट कर मरने के लिए, लेकिन क्यों बनती है यह सब.... कैसे बनती है इस तरह.. ? आखिर कब तक हमारा समाज अपने-आपको इस तरह की सोच से बाहर निकाल पायेगा; यह भी एक बहुत बड़ा सवाल है हमारे सामने - "बेला, फूलन देवी का किस्सा सुने या आपबीती दोहराए या कि आंखों से भस्म कर देने वाली, कई-कई हाथों से दुष्ट-दलन करने वाली दुर्गा का मनन करे? उसे पक्का विश्वास हो गया है कि देवी किसी मंदिर या मढ़िया में नहीं होतीं, वे बीहड़ घाटियों में रहती हैं फूलन बनकर। वे समाज में रहती हैं डायन बनकर, वे घरों में रहती हैं चुड़ैल बनकर और वे रसूखवालों के बीच रहती हैं बेला बनकर।"9

विकास के नाम पर ऊँची आवाज से डराने वाले, तथाकथित भारत के सभ्य नेतृत्वकर्ता, महिलाओं की सुरक्षा का वचन देने वाले, बाजार, दफ्तर, ट्रेन, बस, यहाँ तक की घर में भी महिलाओं को असुरक्षा की संभावनाओं से उबार नहीं पाते| इसके बाद भी हिम्मत नहीं हारतीं ये जाबाँज वीरांगनाएँ - "मगर बात यह भी भूलने की नहीं है कि लड़कियां और औरतें इनसे शरीर में नुकीले सरिया फंसे होने के बावजूद लड़ती हैं। जब तक जान रहती है, वे सुस्त नहीं होतीं, मात नहीं खातीं। तभी तो हारकर इन दरिंदों को उन जांबाज लड़कियों की हत्या करनी पड़ती है।"10

महिलाओं के साथ दुराचार और उनकी नृशंस हत्या करने वाले मर्द नामक इन्सान समाज को किस तरफ ले जा रहे हैं ? यह कौन सा विकास है ? इनको किस सभ्यता और संस्कृति का विकास-वाहक मानेंगे ? यह केवल एक प्रश्न नहीं है, प्रश्न यह है कि इसे एक प्रश्न के तरह आंतरिक संवेदना से जोड़कर इसका निदान क्यों नहीं किया जा रहा है? जब यह एक महामारी का रूप पकड़ता जा रहा है तब हम इस पर सियासती दाँव खेल रहे हैं | इसके भयावह परिणाम के प्रति गंभीरता से सोचने और सोचने के साथ-साथ इससे निपटने के लिए सूत्र खोजा जाय | औरतों के प्रति समाज की सोच कब बदलेगी, उन्हें और उनके अधिकारों को हम कब समझेंगे ? औरतों को अपनी संपत्ति समझने वाले पुरुष कब अपनी मानसिकता में बदलाव लाएँगे ? उपन्यास का एक पात्र अजय सिंह कहता है - "अपने समाज में यह बात बड़े प्रामाणिक तरीके से सिद्ध की जाती है कि औरत अक्सर ही बड़ी हैसियत वालों, दौलतमंदों और बड़ी जाति वालों को अपनी जवानी का लालच दिखाकर फाँस लेती है, जिसे वे नादान मोहब्बत समझ लेते हैं। मोहब्बत की बेड़ियां बड़ी कसावट वाली होती हैं। आदमी दिखाता है कि पुरानी आशनाई खत्म हो गई मगर भीतर ही भीतर उस पर कुढ़ता रहता है। यही कारण है कि इस इश्क के जोर का हथियार खानदान तक को नहीं छोड़ता। जाती दुश्मन हो जाते हैं मर्द नाम के इंसान। और तब ये औरतें अपनी जीत का आनंद लेती हैं। डंकिनी-शंखिनी, दूती, कुटनी औरतों की कहानियां ऐसी ही हैं।" 11

औरतों का प्रयोग अगर पुरुष अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करता है तो एक न एक दिन उसे भी उसका शिकार होना ही पड़ता है | तब वह चिल्लाने लगता है, अपनी समस्त दमनकारी शक्तियों का प्रयोग करता है | समाज के सामने न्याय की गुहार लगाता है| वह भूल जाता है कि अपनी ही करनी का फल उसे भुगतना पड़ रहा है | अपने पर किये गए अत्याचार के प्रतिशोध में घाटियों, बीहड़ों और जेल तक चली जाने वाली फूलन, बेला, बसंती, उजाला को पैदा करने वाला यह समाज क्या आज भी उसी तरह जीता रहेगा ? अगर यही संकल्प है तो फिर हम किस मानवी सभ्यता के विकास की बात बड़े गर्व से सीना-तान कर करते रहते हैं ? सुनने वालों आप भी कम दोषी नहीं, अब समय आ गया है इस बड़बोलेपन का जवाब देना ही होगा |

कहने को इक्कीसवीं शताब्दी और हम आज कहाँ जी रहे हैं, हमारा समाज आज भी बेला-बहू ,बसंती, जुझार, उजाला, वीर और अजय सिंह को घुटन, अपमान, शोषण, के विरुद्ध बगावत करने के लिए मजबूर करता है परिणाम स्वरूप समाज में 'शुगर सिंह', 'भारत सिंह', और 'जोरावर' जैसे आततायियों से संघर्ष करना पड़ता है| विकास की इस होड़ को क्या नाम देंगे...? यही की हम वहीं हैं.... जहाँ से चले थे ..... बल्कि यह सही होगा कि उससे भी नीचे गिर गए हैं | यह उपन्यास मानव सभ्यता के विकास क्रम को लेकर

एक बड़ा सवाल छोड़ जाता है. एक पूर्व डकैत अजय सिंह द्वारा बेला को लिखी चिठ्ठी देखिए, ''अखबार में हम क्या पढ़ें? हत्याओं, बलात्कारों और औरतों को जलाने की वारदातों से पटा पड़ा रहता है. हमें अजूबा लगता है बिन्नू कि हमें लोग डकैत, हत्यारा क्यों मान रहे हैं? औरतों और लड़कियों की गुहार ऐसी कि रास्ता न सूझे... क्या वे बाहर निकलना छोड़ दें, सड़क उनके लिए नहीं है, विश्वविद्यालय खूनी जंगल हैं, बसें बलात्कारियों के लिए सेफ जगह.....|'' के उत्तर में बेला क्या लिखे? क्या यही कि, 'कैसा विधान है कि नागरिक डाका डाल रहे हैं, हत्या कर रहे हैं, बलात्कारों के क्षेत्र बनाते जा रहे हैं और एक डाकू तथाकथित अपराधी, समाज का कलंक इस स्थिति पर विलाप कर रहा है, सज्जनता की रस्सियों में बंधा छटपटा रहा है.' निश्चय ही यह उपन्यास बहुत सारी अमानवीयता के विरुद्ध न सिर्फ खड़े होने का साहस प्रदान करता है वरन सामाजिक बदलाव का संदेश भी देता है| यह बदलाव निरंतर आवश्यक है | इसके लिए बागी बनना पड़ेगा | क्रांति का संदेश देने का समय नहीं, क्रांति करने का समय है| कब तक हम मानव सभ्यता के विकास क्रम को झूठलाते रहेंगे | सवाल बनने से अच्छा है जवाब बनना |

सन्दर्भ -

1- संघर्ष का अनूठा दस्तावेज: अनंत विजय – चौथी दुनिया- 22 दिसंबर 2014

2- संघर्ष का अनूठा दस्तावेज: अनंत विजय – चौथी दुनिया- 22 दिसंबर 2014

3 - दिनेश कुमार : 15/05/2014, तहलका-इश्यू-9 वाल्यूम-6

4- दैनिक-ट्रिव्यूनल- वंदना सिंह – अप्रील- 12, 2016,

5- 'फरिश्ते निकले' प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन,कवर-पेज

6 – तहलकाहिंदीपत्रिका, वाल्यूम-7इश्यू-2, 31जनवरी2015

7- तहलका हिंदी पत्रिका, वाल्यूम-7 इश्यू-2, 31जनवरी 2015

8- 'फरिश्ते निकले' प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ :87

9- 'फरिश्ते निकले' प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ : 86

10- 'फरिश्ते निकले'प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन,पृष्ठ : 100

11- 'फरिश्ते निकले' प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ :215

Printed by Deepak C. Nanaware, Palavi Printers, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 and published by Shilpa Deepak Nanaware, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 on behalf of Shilpa Deepak Nanaware, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 and printed at Palavi Printers, 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur - 413001 and published at 129/498, Vasant Vihar, Nr. Old Pune Naka, Solapur – 413001 editor Deepak C. Nanaware.

Disclaimer

The views expressed by the authors in their articles, reviews etc. in this issue are their own. The Editor, Publisher and owner are not responsible for them. All disputes concerning the journal shall be settled in the court at Solapur, Maharashtra